महोपाध्याय जयसागर

[अगरचन्द नाहटा]

खरतर गच्छ में आचार्यों के अतिरिक्त बहुत से ऐसे प्रभावशाली विद्वान हुए हैं जिन्होंने अनके स्थानों में विचर कर अच्छा धर्म प्रचार किया और साहित्य-निर्माण में भी निरन्तर लगे रहे। पट्टावलियों में आचार्य-परम्परा का ही विवरण रहता है इसलिए ऐसे विशिष्ट विद्वानों के सम्बन्ध में भी प्रायः आवश्यक जानकारी हमें नहीं मिल पाती। मुनि जिनविजयजी ने सन् १९१६ में उपाध्याय जयसागर की विज्ञप्ति-त्रिवेणी नामक महत्वपूर्ण रचना सुसम्पादित कर जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित करवायी थी। इसके प्रारंभ में उन्होंने बहुत महत्वपूर्ण एवं विस्तृत प्रस्तावना ९६ पृष्ठों में लिखी थी, इस में जयसागर उपाध्याय के संबन्ध में लिखा था कि 'इनके जन्म स्थान और माता पितादि के विषय में कुछ भी वृत्तान्त उपलब्ध नहीं हुआ, होने की विशेष संभावना भी नहीं है। विशेषकर इन बातों का उल्लेख पट्टावली में हुआ करता है परन्तु उस में भी केवल गच्छपति आचार्य ही के सम्बन्ध की बातें लिखी जाने की प्रथा होने से इतर ऐसे व्यक्तियों का विशेष हाल नहीं मिल सकता। ऐसे व्यक्तियों के गुर्वादि एवं समयादि का जो कुछ थोड़ा बहुत पता लगता है वह केवल उनके निजके अथवा शिष्यादि के बनाये हुए ग्रन्थों वगैरह की प्रशस्तियों का प्रताप है।"

सौभाग्य से हमारे संग्रह में एक ऐसा प्राचीन पत्र मिला जिसमें उ० जयसागरजी सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण बातें लिखी हुई थी अतः हमने उसका आवश्यक अंश अपने 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' पृ० ४०० में प्रकाशित कर दिया था तथा उसका ऐतिहासिक सार, उनकी रचनाओं की नामावली सह प्रारंभ में दे दिया था। पर उसी पत्र के नीचे इनके वंश का विवरण भी लिखा हुआ था, जिसे नहीं दिया जा सका। उसे शोधपत्रिका भाग ९ अंक १ में प्रकाशित हमारे 'महोपाध्याय जयसागर और उनकी रचनाएँ' नामक लेख में छपवा दिया गया था।

सं० १९९४ में मुनि जयन्तविजयजी का 'श्री अर्बुद प्राचीन जैन लेख संदोह' नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, उसमें आबू के खरतरवसही या चौमुखजी के प्रतिमा लेख भी प्रकाशित हुए, इनमें से लेखाङ्क ४४९-५६-५७ में जयसागर महोपाध्याय के मन्दिर निर्माता दरड़ा गोत्रीय संघपति मण्डलिक के भ्राता होने का उलेख प्रकाशित हुआ। मुनि जयन्तविजयजी ने आबू की खरतरवसही के लेखों का गुजराती अनुवाद प्रकाशित करते हुए संघपति मन्डलिक का शिलालेखों में प्राप्त वंश वृक्ष भी दे दिया था। उसमें उन्होंने लिखा था कि संघवी मन्डलिक के ६ भाइयों में से बड़े भाई साह देल्हा और छोटे भाई साह महीपति के स्त्री पुत्र परिवार के नाम किसी प्रतिमा लेख में नहीं मिले। अतः छोटे भाई महीपति की अल्प वय में मृत्यु हो गई होगी और बड़े भाई देल्हा ने छोटी उम्र में ही दीक्षा ले ली होगी। ऐसा लगता है कि दीक्षित अवस्था में इनका नाम जयसागरजी रखा गया होगा। पीछे से योग्यता प्राप्त होने पर वे महोपाध्याय हो गए। इसी लिए संघवी मण्डलिक के कई लेखों में 'श्री जयसागर महोपाध्याय बान्धवेन' लिखा मिलता है। अर्थात् महोपाध्याय जयसागरजी संघवी मण्डलिक के संसार-पक्ष में भ्राता होते थे।

वास्तव में मुनि श्री जयन्तविजयजी के उपर्युक्त दोनों अनुमान सही नहीं हैं। पूज्य गणिवर्य श्री बुद्धिमुनिजी ने हमें उ० जयसागरजी के रचित स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक महत्वपूर्ण प्रशस्ति नकल करके भेजी थी, इससे स्पष्ट है कि संघपति मण्डलिक के भ्राता संघपति महीपति ने सं० १५०६ में यह प्रति लिखवायी थी और इस प्रशस्ति में महीपति की पत्नी पुत्रों और पुत्रबधु के नाम प्राप्त हैं, अतः महीपति की अल्पायु में मृत्यु हो गई—यह अनुमान जो आबू के प्रतिमा लेखों में महीपति के स्त्रीपुत्रों के नाम न मिलने से किया गया था, प्राप्त प्रशस्ति से असिद्ध हो जाता है। इसी तरह देल्हा के भी स्त्रीपुत्रादि का प्रतिमा लेखों में नाम न मिलने से उन्होंने अल्पायु में दीक्षा ले ली होगी व उनका नाम जयसागर रखा गया होगा—यह अनुमान भी प्राप्त प्रशस्ति में देल्हा के पुत्र कोहट का नाम मिल जाने से गलत सिद्ध हो जाता है। सब से महत्वपूर्ण बात इस प्रशस्ति से यह मालूम होती है कि हरिपाल के पुत्र आसिग या आसराज के पुत्रों में से तृतीय पुत्र जिनदत्त ने बाल्यावस्था में दीक्षा ग्रहण करली थी। आठवें श्लोक में इसका स्पष्ट उल्लेख होने से यह निश्चित हो जाता है कि जयसागरजी दरड़ा गोत्रीय आसराज के पुत्र थे और उनका 'जिनदत्त' नाम था, तथा बाल्यावस्था में दीक्षा ग्रहण कर ली थी। प्रतिमा लेखों में हरिपाल के पूर्वजों के नाम नहीं मिलते लेकिन प्रशस्ति में पद्मसिंह-खोमसिंह ये दो नाम पूर्वजों के और मिल जाते हैं तथा वंशजों के भी कई अज्ञातनाम प्राप्त हो जाते हैं। साथ ही साथ इस वंश के पुरुषों के कतिपय अन्य सुकृत्यों का भी उल्लेखनीय विवरण मिल जाता है। यथा—

संघपति आसा धर्मशाला, तीर्थयात्रा, उपाध्यायपद स्थापन और स्वधर्मी-वात्सल्यादि में द्रव्य का सद्व्ययकर कृतार्थ हुए थे। सं० १४८७ में उ०जयसागरजी के सान्निध्य में मण्डलिक ने शत्रुञ्जय-गिरनार महातीर्थों की संघ सहित यात्रा की थी। एवं दूसरी बार सं० १५०३ में भी उभय-तीर्थों की यात्रा की थी। मण्डलिक आदि ने आबू पर चौमुख प्रासाद बनाया था, इसी प्रकार गिरनार तीर्थ के वीर जिनालय में देवकुलिका निर्माण करवायी थी। प्रस्तुत प्रशस्ति वा० जयसागर की रचित है ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने से नीचे दी जा रही है।

स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र-प्रशस्ति (१)

स्वस्ति सर्व्वास्तिमन्मुख्यः, ऊकेशः ज्ञातिमण्डनः ॥
पद्मसिंहः पुरा जज्ञे, खीमसिंहस्ततः क्रमात् ॥१॥
खीमणिर्दयिता तस्य हरिपालस्तदङ्गभूः ॥
निविष्टं यन्मनः पूष्णि श्राद्धधर्म्ममयं महः ॥२॥
दसाजकान्हड़ौ भोज वीरभावासिगस्तथा ॥
बड़ुयाकश्च सर्वेऽपि षडमी हरिपालजाः ॥३॥
भारमल्लो भावदेवो, भीमदेवस्तृतीयकः ॥
कान्हड़स्य त्रयोऽप्येते सुताः सुजनताश्रिताः ॥४॥
छाड़ादयः पुनः पञ्च नन्दना भोजसम्भवाः ॥
आसीद्वीरमसम्भूतो—नगराजः सुताधिकः ॥ ५॥
प्रथमराज इत्यस्ति बड़ुयाङ्गरुहो महान् ॥
तेषु श्रीमानुदारश्च, साधुवासाको व्यशिष्यत ॥६॥
तत्प्रिया श्रियधर्म्मासो - त्सोधूरित्यमलाशया ॥
तयोरष्टसुतेष्वाद्यः पाल्हः प्रल्हादभूमनाः ॥७॥
द्वितीयो मण्डनो नाम कुटुम्बजनपूजितः ॥
तृतीयो जिनदत्तश्च यो बाल्येऽप्यग्रहीद्व्रतम् ॥८॥
चतुर्थः किल देल्हाख्य झुंटाकः पञ्चमः पुनः ॥
मण्डलाधिपवन्मान्यः षष्ठो मण्डलिकस्तथा ॥
सप्तमः साधुवालाको—ऽष्टमः साधुमहीपतिः ॥९॥
गोविन्दरतनाहर्ष — राजा पाल्हाङ्गजास्त्रयः ॥
कोहटो देल्हजन्माऽऽस्ते तस्याप्यस्त्यम्बडोङ्गजः ॥१०॥
श्रीपालो भीमसिंहश्च, द्वाविमौ ऊण्टजातकौ ॥
साजणः सत्यनाऽस्ते, पुत्रो मण्डलिकस्य तु ॥११॥
पोमसिंहो लष्म(क्ष्म)सिंहो-रणमल्लश्च माल्हजाः ॥
सुस्थिरः स्थावरो नाम, महीपत्यङ्गसम्भवः ॥१२॥
तद्भार्या पूतलिः पुण्य-वती शीलवती सती ॥
तनयौ सुनयौ तस्या देवचन्द्र-हचाभिधौ ॥ ३॥
कलत्रं देवचन्द्रस्य, कोबाई नामतः शुभा ॥
महीपतिपरीवार — श्चिरं जयतु भूतले ॥१४॥
इत्यादि सन्ततिर्भुयस्यासाकस्योज्ज्वले कुले ।
उत्तरोत्तर सत्कर्म्म-निरतास्ते निरन्तरम् ॥१५॥
धर्म्मशाला तीर्थयात्रो-पाध्याय स्थापनादिषु ।
साधर्म्मिकेषु चासाको धनं निन्ये कृतार्थताम् ॥१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपिच-संवत् १४८७ वर्षे सहोदरभावस्थितोपाध्याय-
श्रीजयसागरगणिसान्निध्यमासाद्य
महाविभूत्या च महामहिम्ना, यात्रां महातीर्थ युगेऽप्यकार्षीत्।
सङ्घेन युक्तो महता महिष्ठः सङ्घेशतां मण्डलिकः प्रपन्नः ॥१७॥
सवत् १५०३ वर्षे तत्सान्निध्यादेव—
लोकोत्तरा स्फातिरुदारता च, लोकोत्तरं सङ्घजनर्चनञ्च।
शत्रुञ्जये रैवतके च यात्रा कृताद्भुता मण्डलिकेन भूयः ॥१८॥
समं मण्डलिकेनैव, मालाकश्च महीपतिः।
तदा सङ्घपती जातौ प्रिया-मण्डलिकस्य तु ॥१९॥
रोहिणी नामतः ख्याता मांजुर्मालाङ्गना पुनः।
मणकाई महोत्साहा, महीपतिसधर्म्मिणी ॥२०॥
आसदन् सङ्घपत्नीत्वमेतास्तिस्रः कुलस्त्रियः।
प्रायेण हि पुरन्ध्रीणां, महत्त्वं पुरुषाश्रितम् ॥२१॥
अर्बुदाद्रिशिरस्युच्चै-स्ते प्रासादं चतुर्मुखम्।
भ्रातरं कारयन्ति स्म, त्रयो मण्डलिकादयः ॥२२॥
इतश्च—
चान्द्रे कुले श्रीजिनचन्द्रसूरिः संविज्ञभावोऽभयदेवसूरिः।
सद्वल्लभः श्रीजिनवल्लभोऽपि युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥२३॥
भाग्याद्भुतः श्रीजिनचन्द्रसूरिः क्रियाकठोरो जिनपतिसूरिः।
जिनेश्वरः सूरिरुदारवृत्तो, जिनप्रबोधो दुरितान्निवृत्तः ॥२४॥
प्रभावकः श्रीजिनचन्द्रसूरिः सूरिर्जिनादिः कुशलान्तशब्दः।
पद्मानिधिः श्रजिनपद्मसूरि-लब्धेर्निधानं जिनलब्धिसूरिः ॥२५॥
संवेगिकः श्रीजिनचन्द्रसूरिर्जिनोदयःसूरिरभूदभूरिः।
ततः परं श्रीजिनराजसूरिः सौभाग्यसीमा श्रुतसम्पदोकः ॥२६॥
तदास्पदव्योमतुषाररोचि र्विरोचते श्रीजिनभद्रसूरिः।
तस्योपदेशामृतपानतुष्ट स्तेषु त्रिषु भातृषु पुण्य पुष्टः ॥२७॥
श्रीरैवते वीरजिनेन्द्रचैत्ये, विधाप्य सद्देवकुलीं कुलीनः।
महीपतिः सङ्घपतिः सुवर्णा-क्षरैर्मुदा लेखयतिस्म कल्पम् ॥
२८॥ युग्मम्

संवत् १५०६ वर्षे—
श्रीजयसागर वाचक विनिर्म्मिता सदसि वाच्यमानाऽसौ।
कल्पप्रशस्तिरमला नन्दत्वानन्दकल्पलता ॥२९॥
इति श्री खरतर गुरुभक्त सङ्घपति मण्डलिक भ्रातृ सङ्घपति सा० महीपति कल्पपुस्तक प्रशस्तिः

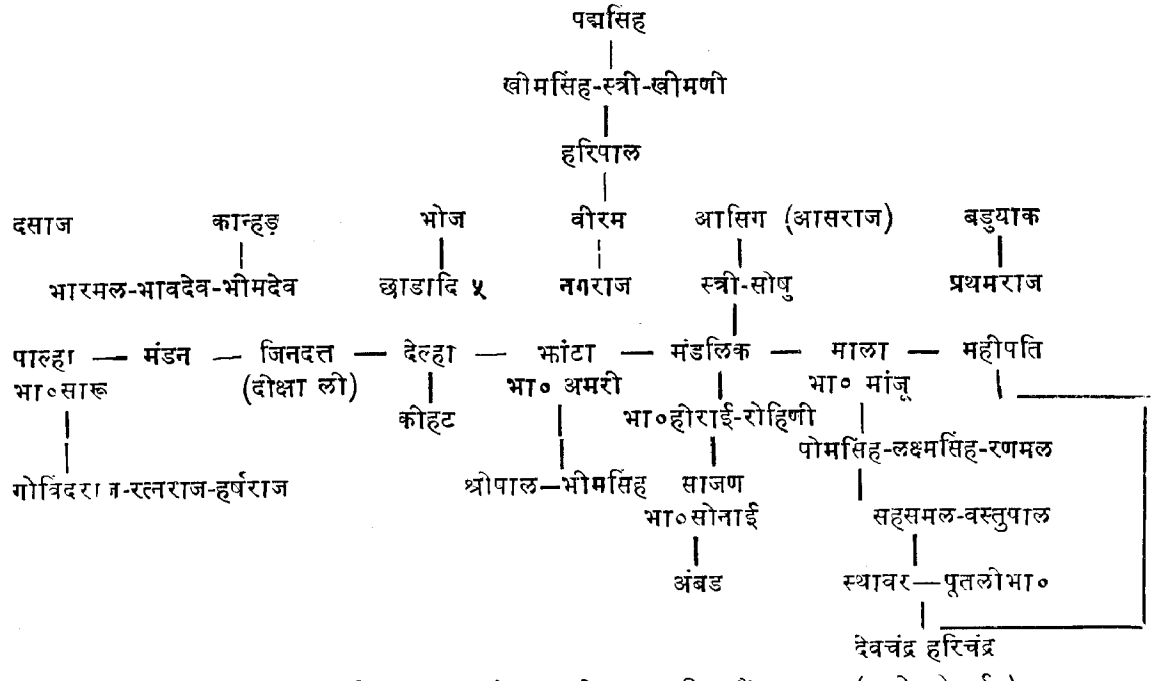

सं० १५११ की प्रशस्ति में गणपति, उदयराज मेघराज के नाम अधिक हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय जयसागरजी की विज्ञप्ति-त्रिवेणी द्वारा अनेक नये तथ्य और जैन इतिहास तथा अप्रसिद्ध तीर्थ सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। मुनि जिनविजयजी ने लिखा है कि विज्ञप्ति त्रिवेणी रूप पत्र ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। इसमें लिखा गया वृत्तांत मनोरंजक होकर जैन समाज की तत्कालीन परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डालता है। उस समय भारत के उन (सिन्धु पंजाब) प्रदेशों में भी जैन धर्म का कैसा अच्छा प्रचार व सत्कार था। इन प्रदेशों में हजारों जैन बसते थे व सैकड़ों जिनालय मौजूद थे जिनमें का आज एक भी विद्यमान नहीं। जिन मरुकोट, गोपस्थल, नन्दनवनपुर और कोटिल्लग्राम आदि तीर्थस्थलों का इसमें उल्लेख है उनका आज कोई नाम तक भी नहीं जानता। जहाँ पर पांच पांच दस दस साधु चातुर्मास रहा करते थे वहां पर आज दो घण्टे ठहरने के लिये भी यथेष्ट स्थान नहीं। जिस नगरकोट महातीर्थ की यात्रा करने के लिए इतनी दूर दूर से संघ जाया करते थे वह नगरकोट कहां पर आया है इसका भी किसी को पता नहीं।

इसमें केवल अलंकारिक वर्णन ही नहीं है परन्तु एक विशेष प्रसंग का सच्चा और सम्पूर्ण इतिहास भी है। ऐसा पत्र अभी तक पूर्व में कोई नहीं प्रगट हुआ। यह एक बिल्कुल नई ही चीज है।"

नगरकोट कांगड़ा में बहुत प्राचीन प्रतिमा थी। खरतरगच्छ के आचार्य जिनेश्वरसूरिजी के प्रतिष्ठित और साधु खीमसिंह कारित शांतिनाथ मंदिर व मूर्ति का उपाध्यायजी ने वहां दर्शन किया। वहां के राजा भी परंपरा से जैन थे। नरेन्द्र रूपचंद के बनाये हुए मंदिर में स्वर्णमय महावीर बिम्बको भी उन्होंने नमन किया। यहां की खरतरवसही का उल्लेख करते हुए लिखा है —

"अपि च नगरकोट्टे देशजालन्धरस्थे
प्रथम जिनपराजः स्वर्णमूर्त्तिस्तु वीरः
खरतरवसतौ तु श्रेयसां धाम शान्ति-
स्त्रयतिदमभिनम्याह्लादभावं भजामि ॥१८॥"

पंजाब और सिन्ध प्रदेश में शताब्दियों तक खरतरगच्छ का बहुत अच्छा प्रभाव रहा है। इस सम्बन्ध में मेरा लेख "सिन्ध प्रान्त और खरतरगच्छ" द्रष्टव्य है।

हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में जयसागरोपाध्याय सम्बन्धी जो महत्त्वपूर्ण विवरण सं० १५११ का लिखा हुआ छपा है उसका सार इस प्रकार है—

"उज्जयन्त शिखर पर नरपाल संघपति ने "लक्ष्मीतिलक" नामक विहार बनाना प्रारंभ किया तब अम्बादेवी, श्री देवी आपके प्रत्यक्ष हुई और सैरिसा पार्श्वनाथ जिनालय में श्री शेष, पद्मावती सह प्रत्यक्ष हुआ था। मेदपाट-देशवर्त्ती नागद्रह के नवखण्डा-पार्श्व चैत्यालय में श्रीसरस्वती देवी आप पर प्रसन्न हुई थी। श्री जिनकुशलसूरिजी आदि देवता भी आप पर प्रसन्न थे। आपने पूर्व में राजगृह नगर उद्दड़-विहारादि, उत्तर में नगरकोट्टादि, पश्चिम में नागद्रह आदि की राजसभाओं में वादि वृन्दों को परास्त कर विजय प्राप्त की थी। आपने सन्देह, दोलावली वृत्ति, पृथ्वीचन्द्र चरित, पर्व रत्नावली, ऋषभस्तव, भावारिवारण वृत्ति एवं संस्कृत प्राकृत के हजारों स्तवनादि बनाये। अनेकों श्रावकों को संघपति बनाये और अनेक शिष्यों को पढ़ाकर विद्वान बनाये।"

इसमें उल्लिखित गिरनार के नरपाल कृत "लक्ष्मीतिलक प्रासाद" के संबन्ध में रत्नसिंहसूरि रचित गिरनार तीर्थमाला में भी उल्लेख मिलता है—

'थापी श्रीतिलक प्रासादहिं, साहनरपालि
पुण्य प्रसादिहिं सोवनमयसिरिवीरो"

महो० जयसागर जिनराजसूरिजी के शिष्य थे अतः उनकी दीक्षा सं० १४६० के आस-पास होनी चाहिये। इनकी दीक्षा बाल्यकाल में हुई, ऐसा प्रशस्ति में उल्लेख है, अतः दस-बारह वर्ष की आयु में दीक्षित होने से जन्म सं०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४४५-५० के बीच होना चाहिये। सं० १४७५ में श्रीजिनभद्रसूरिजी ने आपको उपाध्याय पद से विभूषित किया था। श्रीजिनवर्द्धनसूरिजी के पास आपने लक्षण-साहित्यादि का अध्ययन किया था। सं० १४७८ से सं० १५०३ तक की आपकी अनेक रचनायें प्राप्त हैं। सं० १५११ की प्रशस्ति के अनुसार आपने हजारों स्तुति-स्तोत्रादि बनाये थे। खेद है कि आपकी रचनाओं की तीन संग्रह-प्रतियाँ हमारे अवलोकन में आईं, वे तीनों ही अधूरी थीं, फिर भी आपकी पचासों रचनाएं संप्राप्त हैं। स्वर्गीय मुनि श्री कान्तिसागरजी के संग्रह में आपकी कृतियों का एक गुटका जानने में आया है जिसे हम अब तक नहीं देख सके हैं। सं० १५१५ के आसपास अपका स्वर्गवास अनुमानित है।

खरतर गच्छ में महोपाध्याय पद के लिए यह परम्परा है कि अपने समय में जो सब उपाध्यायों से वयोवृद्ध-गीतार्थ हो वह अपने समय का एक ही महोपाध्याय माना जाता है। आचार्य-उपाध्याय तो अनेक हो सकते पर महोपाध्याय एक ही होता है, अतः महोपाध्याय जयसागर दीर्घायु, पचहत्तर-अस्सी वर्ष के हुए होंगे। असाधारण प्रतिभा सम्पन्न विद्वान होने के नाते आपने सैकड़ों रचना अवश्य की होगी। प्रायः रचनाओं का सुसम्पादित आलोचनात्मक संग्रह प्रकाशन होने से आपकी विद्वत्ता का सच्चा मूल्यांकन हो सकेगा।

महो० जयसागरजी की शिष्य-परम्परा भी बड़ी महत्वपूर्ण रही है। मुनि जिनविजयजी ने विज्ञप्ति त्रिवेणी की विस्तृत प्रस्तावना में आपके शिष्य समूह के सम्बन्ध में भी लिखा है। तदनुसार आपके प्रथम शिष्य मेघराज गणि थे जिनके रचित नगरकोट के आदिनाथ स्तोत्र, चौबीस पद्यों का हारबन्ध काव्य है। दूसरे शिष्य सोमकुञ्जर के विविध अलंकारिक पद्य विज्ञप्ति त्रिवेणी में प्राप्त हैं। एवं खरतरगच्छ-पट्टावली हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में पद्य ३० की प्रकाशित है। जेसलमेर के श्री संभवनाथ जिनालय की प्रशस्ति सं० १४९७ में आपने निर्माण की जो जैसलमेर जैन लेख संग्रह में मुद्रित है।

जयसागरोपाध्याय के विशिष्ट शिष्यों में उ० रत्नचन्द्र भी उल्लेखनीय है जिनकी दीक्षा सं० १४८४ के लगभग हुई होगी। सं० १५०३ में जयसागरोपाध्याय के पृथ्वीचन्द्र चरित्र की प्रशस्ति में गणि रत्नचन्द्र द्वारा रचना में सहायता का उल्लेख है। सं० १५२१ से पूर्व इन्हें उपाध्याय पद प्राप्त हो चुका था। इनके शिष्य भक्तिलाभोपाध्याय भी अच्छे विद्वान थे उनकी कई रचनायें उपलब्ध हैं। उनके शिष्य पाठक चारित्रसार के शिष्य चारुचन्द्र और भानुमेरु वाचक थे जिनके शिष्य ज्ञानविमल उपाध्याय और उनके शिष्य श्रीवल्लभोपाध्याय अपने समय के नामी विद्वान थे। आपके रचित विजयदेव माहात्म्य की मुनि जिनविजयजी ने बड़ी प्रशंसा की है। आपके अरजिनस्तव सटीक और संघपति रूपजी वंश प्रशस्ति महो० विनयसागर जी संपादित एवं विद्वद्प्रबोध तथा हेमचन्द्र के व्याकरण कोश आदि की टीका प्रकाशित हो चुकी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org